सत् सुखम्, सदेव सातम्, यथा पंडुरमेव पांडुरं । सातं वेदयतीति[1] सातवेदनीयं, दुक्खपडिकारहेदुदव्वसंपादयं[2] दुक्खुप्पायणकम्मदव्वसत्तिविणासयं च कम्मं सादावेदणीयं णाम । जीवस्स सुहसहावस्स दुक्खुप्पाययं दुक्खपसमण[3]हेदुदव्वाणमवसारयं च कम्ममसादावेदणीयं णाम । एवं दो चेव पयडीओ । अण्णाणं पि दुक्खुप्पाययं दिस्सदि त्ति तस्स वि असादावेदणीयत्तं किण्ण पसज्जदे ? ण, अणियमेण दुक्खुप्पाययस्स असादत्ते संते खग्ग-मोग्गरादीणं पिं असादावेदणीयत्तप्पसंगादो ।

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ।। ८९ ।।

सुगमं ।

मोहणीयस्स कम्मस अट्ठावीस पयडीओ[4] ।। ९० ।।

एदं संगहणयविसयसुत्तं सुगमं । संपहि पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

तं च मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चरित्तमोहणीयं चेव[5] ।।९१।।

मोहयतीति मोहणीयं कम्मदव्वं । अत्तागम-पयत्थेसु पच्चओ रुई सद्धा पासो च दंसणं

'सत्' का अर्थ सुख है, इसका ही यहां सात शब्दसे ग्रहण किया गया है; जैसे कि पण्डुरको पाण्डुर शब्दसे भी ग्रहण किया जाता है। सातका जो वेदन कराती है वह सातावेदनीय प्रकृति है । दुःखके प्रतीकार करनेमें कारणभूत सामग्रीका मिलानेवाला और दुःखके उत्पादक कर्मद्रव्यकी शक्तिका विनाश करनेवाला कर्म सातावेदनीय कहलाता है । सुख स्वभाववाले जीवको दुःखका उत्पन्न करनेवाला और दुःखके प्रशमन करनेमें कारणभूत द्रव्योंका अपसारक कर्म असातावेदनीय कहा जाता है । इस प्रकार वेदनीयकी दो ही प्रकृतियां हैं ।

शंका - अज्ञान भी तो दुःखका उत्पादक देखा जाता है, इसलिये उसे भी असातावेदनीय क्यों न माना जाय ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, अनियमसे दुःखके उत्पादकको असातावेदनीय मान लेनेपर तलवार और मुद्गर आदिको भी असातावेदनीय मानना पडेगा ।

मोहनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ।। ८९ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां हैं ।। ९० ।।

यह संग्रहनयको विषय करनेवाला सूत्र सुगम है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंका अनुग्रह करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं –

वह मोहनीय कर्म दो प्रकारका है- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ।। ९१ ।।

जो मोहित करता है वह मोहनीय नामक कर्मद्रव्य है । आप्त, आगम और पदार्थोंमें जो प्रत्यय,

---

(१) अ-आप्रत्योः 'वेदनायतीति,' काप्रतौ 'वेदणायतीति,' ताप्रतौ 'वेदणीयतीति' पाठः । (२) का-ताप्रत्योः 'संपातयं' इति पाठः । (३) ताप्रतौ 'दुकखुपसमण-' इति पाठः । (४) षट्खं. जी. चू.१, १९. (५) षट्खं, जी,चू,१, २०.

णाम। तस्स मोहयं तत्तो विवरीयभावजणणं दंसणमोहणीयं णाम। रागाभावो चारित्तं, तस्स मोहयं तप्पडिवक्खभावुप्पाययं चारित्तमोहणीयं।

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधदो एयविहं[1] ॥ ९२ ॥

तब्बंधकारणस्स बहुत्ताभावादो। कारणभेदेण कज्जभेदो होदि, ण अण्णहा। तदो दंसणमोहणीयं बंधदो एयविहं चेवेत्ति सिद्धं।

तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं[2] ॥ ९३ ॥

कधं बंधकाले एगविहं मोहणीयं संतावत्थाए तिविहं पडिवज्जदे ? ण एस दोसो, एक्कस्सेव[3] कोद्दवस्स दलिज्जमाणस्स एगकाले एगकिरियाविसेसेण तंदुलद्धतंदुल-कोद्दवभावुवलंभादो[4]। होदु तत्थ तधाभावो सकिरियजंतसंबंधेण ? ण, एत्थ वि अणियट्टिकरण-सहिदजीवसंबंधेण एगविहस्स मोहणीयस्स तधाविहभावाविरोहदो। उप्पण्णस्स सम्मत्तस्स सिढिल[5]भावुप्पाययं अथिरत्तकारणं च कम्मं सम्मत्तं णाम। कधमेदस्स कम्मस्स सम्मत्तववएसो?

रुचि, श्रद्धा और दर्शन होता है उसका नाम दर्शन है। उसको मोहित करनेवाला अर्थात् उससे विपरीत भावको उत्पन्न करनेवाला कर्म दर्शनमोहनीय कहलाता है। रागका न होना चारित्र है। उसे मोहित करनेवाला अर्थात् उससे विपरीत भावको उत्पन्न करनेवाला कर्म चारित्रमोहनीय कहलाता है।

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, उसके बन्धके कारण बहुत नहीं हैं। कारणके भेदसे ही कार्यमें भेद होता है, अन्यथा नहीं होता। इसलिये दर्शनमोहनीय कर्म बंधकी अपेक्षा एक प्रकारका ही है, यह सिद्ध है।

किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है–सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥९३॥

शंका – जो मोहनीय कर्म बंधकालमें एक प्रकारका है वह सत्त्व अवस्थामें तीन प्रकारका कैसे हो जाता है ?

समाधान – यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, दला जानेवाला एक ही प्रकारका कोदों द्रव्य एक कालमें एक क्रियाविशेषके द्वारा चावल, आधे चावल और कोदों, इन तीन अवस्थाओंको प्राप्त होता है। उसी प्रकार प्रकृतमें भी जानना चाहिए।

शंका – वहां क्रियायुक्त जांते (एक प्रकारकी चक्की) के सम्बन्धसे उस प्रकारका परिणमन भले ही हो जावे, किन्तु यहां वैसा नहीं हो सकता ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, यहांपर भी अनिवृत्तिकरण सहित जीवके सम्बन्धसे एक प्रकारके मोहनीयका तीन प्रकार परिणमन होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमें शिथिलताका उत्पादक और उसकी अस्थिरताका कारणभूत कर्म सम्यक्त्व कहलाता है।

---

(१) षट्‌ख. जी.चू. १, २१ (२) षट्‌ख. जी.चू. १, २१. (३) अप्रतौ 'कम्मस्सेव' इति पाठः।
(४) जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥ गो.क.२६.
(५) काप्रतौ 'सिदिल'; ताप्रतौ 'सिथिल' इति पाठः।

सम्मत्तसहचारादो । सम्मत्त-मिच्छत्तभावाणं संजोगसमुब्भूद[1]भावस्स उप्पाययं कम्मं सम्मामिच्छत्तं णाम । कधं दोण्णं विरुद्धाणं भावाणमक्कमेण एयजीवदव्वम्हि वुत्ती ? ण,[2] दोण्णं संजोगस्स कधंचि जच्चंतरस्स कम्मड्डवणस्सेव[3](?) वुत्तिविरोहाभावादो । अत्तागम-पयत्थेसु असद्धुप्पाययं[4] कम्मं मिच्छत्तं णाम । एवं दंसणमोहणीयं कम्मं तिविहं होदि ।

जं तं चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेयणीयं चेव[5] ।। ९४ ।।

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो कसायं वेदयदि तं कम्मं कसायवेयणीयं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो णोकसायं वेदयदि तं णोकसायवेदणीयं णाम । सुख-दुःख-सस्य-कर्म-क्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः । ईषत्कषायाः नोकषायाः । केन नोकषायाणामीषत्वम् ? स्थितिबन्धेन अनुभवबन्धेन च । किं च- कषायान्नोकषायाः अल्पाः, क्षपकश्रेण्यां नोकषायोदये विनष्टे सति पश्चात् कषायोदयविनाशात् णोकसायोदयअणुबंधकालं पेक्खिदूण कसायोदय-

---

शंका - इस कर्मकी सम्यक्त्व संज्ञा कैसे है ?

समाधान - सम्यक्त्वका सहचारी होनेसे।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप दोनों भावोंके संयोगसे उत्पन्न हुए भावका उत्पादक कर्म सम्यग्मिथ्यात्व कहलाता है ।

शंका - सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप इन दो विरुद्ध भावोंकी एक जीव द्रव्यमें एक साथ वृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि ---- (?) के समान उक्त दोनों भावोंके कथंचित् जात्यन्तरभूत संयोगके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

आप्त, आगम और पदार्थोंमें अश्रद्धाको उत्पन्न करनेवाला कर्म मिथ्यात्व कहलाता है । इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म तीन प्रकारका है ।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है – कषायवेदनीय और नोकषा-यवेदनीय ।। ९४ ।।

जिस कर्मके उदयसे जीव कषायका वेदन करता है वह कषायवेदनीय कर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव नोकषायका वेदन करता है वह नोकषायवेदनीय कर्म है । सुख और दुःख रूपी धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्रको जो कृषते हैं जोतते है वे कषाय हैं । ईषत् कषायोंको नोकषाय कहा जाता है।

शंका - नोकषायोंमें अल्परूपता किस कारणसे है ?

समाधान-स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी अपेक्षा उनमें अल्परूपता है । तथा कषायोंसे नोकषाय अल्प हैं, क्योंकि, क्षपकश्रेणिमें नोकषायोंके उदयका अभाव हो जानेपर तत्पश्चात् कषायोंके उदयका

---

(१) ताप्रतौ 'समुद्भूद-' इति पाठः । (२) अ-आ-काप्रतिषु 'ण' इति नास्ति । (३) काप्रतौ 'कवुरवणस्सेव', ताप्रतौ 'कम्मड्डरवणस्सेव' इति पाठः । (४) अ-आ-काप्रतिषु 'असदद्दुप्पाययं' इति पाठः । (५) षट्खं. जी.चू.१, २२.

अणुबंधकालस्स अणंतगुणत्तुवलंभादो वा। कसायाणमुदयकालो अंतोमुहुत्तं, णोकसायस्स उदयकालो अणंतो, तेण णोकसाएहिंतो कसायाणं थोवत्तमत्थि त्ति सण्णाविवज्जासो किण्ण इच्छिदो ? ण, एवंविहविवक्खाभावादो ।

जं तं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलहविहं - अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं कोहसंजलणं माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं चेदि[1] ।। ९५ ।।

सम्मद्दंसण-चारित्ताणं विणासया कोह-माण-माया-लोहा अणंतभवाणुबंधणसहावा अणंताणुबंधिणो णाम । अणंतेसु भवेसु अणुबंधो जेसिं ते वा अणंताणुबंधिणो भण्णंति[2] । ईषत्प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति व्युत्पत्तेः अणुव्रतानामप्रत्याख्यानसंज्ञा । अपच्चक्खाणस्स आवारयं कम्मं अपच्चक्खाणावरणीयं । पच्चक्खाणं महव्वयाणि, तेसिमावारयं कम्मं पच्चक्खाणावरणीयं । तं चउव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण । सम्यक् शोभनं ज्वलतीति

विनाश होता है। अथवा नोकषायोंके उदयके अनुबन्धकालको देखते हुए कषायोंके उदयका अनुबन्धकाल अनन्तगुणा उपलब्ध होता है, इस कारण भी नोकषायोंकी अल्पता जानी जाती है ।

शंका - कषायोंका उदयकाल अन्तमुहूर्त है, परन्तु नोकषायोंका उदयकाल अनन्त है; इस कारण नोकषायोंकी अपेक्षा कषायोंमें ही स्तोकपना है । इसीलिए इनकी उससे विपरीत संज्ञा क्यों नहीं स्वीकार की गई है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, इस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है ।

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ।। ९५ ।।

जो क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रका विनाश करते हैं तथा जो अनन्त भवके अनुबन्धन स्वभाववाले होते हैं वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं । अथवा, अनन्त भवोंमें जिनका अनुबन्ध चला जाता है वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं । 'ईषत् प्रत्याख्यानं अप्रत्याख्यानम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार अणुव्रतोंकी अप्रत्याख्यान संज्ञा है । अप्रत्याख्यानका आवरण करनेवाला कर्म अप्रत्याख्यानावरणीय कर्म है । प्रत्याख्यानका अर्थ महाव्रत है । इनका आवरण करनेवाला कर्म प्रत्याख्यानावरणीय है । वह क्रोध, मान, माया, और लोभके भेदसे चार प्रकारका है । जो 'सम्यक्' अर्थात् शोभन रूपसे 'ज्वलति' अर्थात् प्रकाशित होता है वह संज्वलनकषाय है ।

---

(१) षट्खं. जी.चू.१, २३. (२) अप्रतौ 'बंधिणो णाम भणंति' इति पाठः ।

संज्वलनः। कुतस्तस्य सम्यक्त्वम् ? रत्नत्रयाविरोधात्। कोह-माण-माया-लोहेसु पादेक्कं संजलणणिद्देसो किमट्ठं कदो ? एदेसिं बंधोदया पुध पुध विणट्ठा, पुव्विल्लतियचउक्कस्सेव अक्कमेण ण विणट्ठा त्ति जाणावणट्ठं।

जं तं णोकसायवेयणीयं कम्मं तं णवविहं-इत्थिवेद[1]-पुरिसवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंच्छा चेदि[2] ॥ ९६ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण पुरिसाभिलासो होदि तं कम्मं इत्थिवेदो णाम। जस्स कम्मस्स उदएण मणुस्सस्स इत्थीसु अहिलासो उप्पज्जदि तं कम्मं पुरिसवेदो णाम। जस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिसेसु अहिलासो उप्पज्जदि तं कम्मं णवुंसयवेदो णाम। जस्स कम्मस्स उदएण अणेयविहो हासो समुप्पज्जदि तं कम्मं हस्सं णाम। जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु जीवाणं रई समुप्पज्जदि तं कम्मं रई णाम। जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु अरई समुप्पज्जदि तं कम्ममरई णाम। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं सोगो समुप्पज्जदि तं कम्मं सोगो णाम। जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स सत्त भयाणि समुप्पज्जंति तं कम्मं भयं णाम। जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु चिलिसा समुप्पज्जदि तं कम्मं दुगुंछा णाम। करुणाए कारणं कम्मं करुणे त्ति किं ण वुत्तं ?ण, करुणाए

शंका - इसे सम्यक्पना कैसे है ?

समाधान - रत्नत्रयका विरोधी न होनेसे।

शंका - क्रोध, मान, माया और लोभमेंसे प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका निर्देश किसलिये किया गया है ?

समाधान - इनके बन्ध और उदयका विनाश पृथक् पृथक् होता है, पहली तीन कषायोंके चतुष्कके समान इनका युगपत् विनाश नहीं होता; इस बातका ज्ञान करानेके लिए क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन पदका निर्देश किया गया है।

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है - स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ ९६ ॥

जिस कर्मके उदयसे पुरुषविषयक अभिलाषा होती है वह स्त्रीवेद कर्म है। जिस कर्मके उदयसे मनुष्यकी स्त्रियोंमें अभिलाषा उत्पन्न होती है वह पुरुषवेद कर्म है। जिस कर्मके उदयसे स्त्री और पुरुष उभयविषयक अभिलाषा उत्पन्न होती है वह नपुंसकवेद कर्म है। जिस कर्मके उदयसे अनेक प्रकारका परिहास उत्पन्न होता है वह हास्यकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें रति उत्पन्न होती है वह रति कर्म है। जिस कर्मके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें अरति उत्पन्न होती है वह अरति कर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंके शोक उत्पन्न होता है वह शोक कर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवके सात प्रकारका भय उत्पन्न होतै है वह भय कर्म है। जिस कर्म के उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें विचिकित्सा उत्पन्न होती है वह जुगुप्सा कर्म है।

शंका - करुणाका कारणभूत कर्म करुणा कर्म है, यह क्यों नहीं कहा ?

---

(१) ताप्रतौ 'णवविहं- तं इत्थिवेद-' इति पाठः। (२) षट्खं. चू.१, २४. मूला, १२, १९२

जीवसहावस्स कम्मजणिदत्तविरोहादो । अकरुणाए कारणं कम्मं वत्तव्वं ? ण एस दोसो, संजमघादिकम्माणं फलभावेण तिस्से अब्भुवगमादो ।

एवडियाओ पयडीओ ।। ९७ ।।

णव चेव णोकसायपयडीओ, दसादीणमसंभवादो ।

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ।। ९८ ।।

एति भवधारणं[1] प्रतीति आयु:[2] । सेसं सुगमं ।

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ – णिरयाउअं तिरिक्खाउअं मणुस्साउअं देवाउअं चेदि[3] । एवडियाओ पयडीओ ।। ९९ ।।

जं कम्मं णिरयभवं धारेदि तं णिरयाउअं णाम । जं कम्मं तिरिक्खभवं धारेदि तं तिरिक्खाउअं णाम । जं कम्मं मणुसभवं धारेदि तं मणुसाउअं णाम । जं कम्मं देवभवं धारेदि तं देवाउअं णाम । एवं चत्तारि चेव आउपयडीओ होंति, पंचमादिभवाणमभावादो ।

णामस्स कम्मस्स[4] केवडियाओ पयडीओ ? ।। १०० ।।

नाना मिनोतीति नाम । सेसं सुगमं ।

समाधान – नहीं, क्योंकि, करुणा जीवका स्वभाव है, अत एव उसे कर्मजनित माननेमें विरोध आता है ।

शंका – तो फिर अकरुणाका कारण कर्म कहना चाहिए ?

समाधान – यह कोई दोष नहीं है, उसे संयमघाती कर्मोंके फलरूपसे स्वीकार किया गया है।

आयु कर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ।। ९८ ।।

जो भवधारणके प्रति जाता है वह आयु है । शेष सुगम है ।

नोकषायवेदनीयकी इतनी प्रकृतियां होती हैं ।। ९७ ।।

नौ ही नोकषायप्रकृतियां होती हैं, क्योंकि, दस आदि प्रकृतियां सम्भव नहीं हैं ।

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां हैं – नारकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु । उसकी इतनी प्रकृतियां होती हैं ।। ९९ ।।

जो कर्म नरक भवको धारण कराता है वह नारकायु कर्म है । जो कर्म तिर्यंच भवको धारण कराता है वह तिर्यंचायु कर्म है । जो कर्म मनुष्य भवको धारण कराता है वह मनुष्यायु कर्म है । जो कर्म देव भवको धारण कराता है वह देवायु कर्म है । इस प्रकार आयु कर्मकी चार ही प्रकृतियां हैं, क्योंकि, पांचवें आदि भव नहीं पाये जाते ।

नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ।। १०० ।।

जो नाना प्रकारसे बनाता है वह नामकर्म है । शेष कथन सुगम है ।

---

(१) का-ताप्रत्योः 'भवणधारणं' इति पाठः । (२) एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः । स.सि.८, ४.
(३) षट्‌ख. जी.चू.१, २५-२६. (४) अ-आ-काप्रतिषु 'णामकम्मस्स' इति पाठः ।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडिणामाणि - गदिणामं जादिणामं[1] सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं[2] सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुवुव्विणामं अगुरुगलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि[3] ।। १०१ ।।

जं णिरय-तिरिक्ख-मणुस्स-देवाणं णिव्वत्तयं कम्मं तं गदिणामं । एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियभावणिव्वत्तयं जं कम्मं तं जादिणामं । जादी णाम सरिसप्पच्चय[4] गेज्झा । ण च तण-तरुवरेसु सरिसत्तमत्थि, दोवंचिलियासु (?) सरिसभावाणुवलंभादो ? ण, जलाहारग्गहणेण दोण्णं पि समाणत्तदंसणादो । जस्स कम्मस्स उदएण ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरपरमाणू जीवेण सह बंधमागच्छंति तं

नामकर्मकी ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं- गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीरबन्धननाम, शरीरसंघातनाम, शरीरसंस्थाननाम, शरीरांगोपांगनाम, शरीरसंहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्‌वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यश:कीर्तिनाम, अयश:कीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनाम ।। १०१ ।।

जो नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव पर्यायका बनानेवाला कर्म है वह गतिनामकर्म है । जो कर्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय भावका बनानेवाला है वह जाति नामकर्म है ।

शंका - जाति तो सदृशप्रत्ययसे ग्राह्य है, परन्तु तृण और वृक्षोंमें समानता है नहीं; क्योंकि, दो दो वृक्षोंमें सदृशभाव उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान - नही; क्योंकि, जल व आहार ग्रहण करनेकी अपेक्षा दोनोंमें ही समानता देखी जाती है ।

जिस कर्मके उदयसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरके परमाणु जीवके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं वह शरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवके साथ संबंधको प्राप्त

---

(१) अ-आ-काप्रतिषु 'णाम' इति पाठः (अग्रेऽप्ययमेवास्ति पाठस्तत्र) । (२) अ-आ-ताप्रतिषु '-सरीरसंघादणामं', काप्रतौ 'सरीरसंघादणाम' इति पाठः । (३) षट्खं.जी.चू.१, २७-२८. (४) ताप्रतौ 'सरीरपच्चय-' इति पाठः ।

कम्मं सरीरणामं। जस्स कम्मस्स उदएण जीवेण संबद्धाणं वग्गणाणं अण्णोण्णं संबंधो होदि तं कम्मं सरीरबंधणणामं[1] । जस्स कम्मस्स उदएण अण्णोण्णसंबद्धाणं वग्गणाणं मट्ठत्तं होदि तं सरीरसंघादणामं[2], अण्णहा तिलमोअओ व्व विसंठुल[3] सरीरं होज्ज । जस्स कम्मस्स उदएण समचउरससादिय-खुज्ज[4]-वामण-हुंड-णग्गोहपरिमंडलसंठाणं सरीरं होज्ज तं सरीरसंठाणणामं[5] । जस्स कम्मस्सुदएण अट्ठण्णमंगाणमुवगाणं च णिप्फत्ती होदि तं अंगोवंगं णामं । जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे हड्डणिप्पत्ती होदि तं सरीरसंघडणं णामं[6] । जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे वण्णणिप्पत्ती होदि तं वण्णणामं । जस्स कम्मस्सुदएण दुविहगंधणिप्फत्ति होदि तं गंधणामं । जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे रस[7]णिप्फत्ती होदि तं रसणामं । जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे फास[8]णिप्फत्ती होदि तं फासणामं । जस्स कम्मस्सुदएण परिचत्तपुव्वसरीरस्स अगहिदुत्तरसरीरस्स जीवपदेसाणं रचणापरिवाडी होदि तं कम्ममाणुपुव्वीणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवस्स सगसरीरं गुरु-लहुगभावविवज्जियं होदि तं कम्ममगुरुअलहुगं णाम । जस्स कम्मस्सुदएण सरीरमप्पणो चेव पीडं करेदि तं कम्ममुवघादं णामं, तस्स उदाहरणं दीह-सिंग-तुंडोद-रादओ । जस्स कम्मस्सुदएण सरीरं परपीडायरं होदि तं परघादं णामं । जस्स कम्मस्स उदएण उस्सास-णिस्सासाणं णिप्फत्ती होदि तमुस्सासणामं । जस्स कम्मस्सुदएण

हुई वर्गणाओंका परस्पर संबंध होता है वह शरीरबन्धन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे परस्पर संबंधको प्राप्त हुई वर्गणओंमें मसृणता आती है वह शरीरसंघात नामकर्म है, इसके विना शरीर तिलके मोदकके समान विसंस्थुल (अव्यवस्थित) हो जाएगा। जिस कर्मके उदयसे समचतुरस्र, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंड और न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानवाला शरीर होता है वह शरीरसंस्थान नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे आठ अंगों और उपांगोंकी उत्पत्ति होती है वह आंगोपांग नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियोंकी निष्पत्ति होती है वह शरीरसंहनन नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें वर्णकी उत्पत्ति होती है वह वर्ण नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें दो प्रकारके गन्धकी उत्पत्ति होती है वह गन्ध नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें रसकी निष्पत्ति होती है वह रस नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें स्पर्शकी उत्पत्ति होती हे वह स्पर्श नामकर्म है। जिस जीवने पूर्व शरीरको तो छोड दिया है, किन्तु उत्तर शरीरको अभी ग्रहण नहीं किया है उसके आत्मप्रदेशोंकी रचनापरिपाटी जिस कर्मके उदयसे होती है वह आनुपूर्वी नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवका अपना शरीर गुरु और लघु भावसे रहित होता है वह अगुरुलघु नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीर अपनेको ही पीडाकारी होता है वह उपघात नामकर्म है। इसका उदाहरण- जैसे दीर्घ सीग, मुख और पेट आदिका होना। जिस कर्मके उदयसे शरीर दूसरोंको पीडा करनेवाला होता है वह परधात नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे उच्छ्वास और निश्वासकी उत्पत्ति होती है वह उच्छ्वास नामकर्म है । जिस

---

(१) अ-आ-काप्रतिषु 'सरीरबंधणं णाम' इति पाठः । (२) अ-आ-काप्रतिषु 'सरीरसंघादं णाम' इति पाठः । (३) आप्रतौ 'विसरुलं', काप्रतौ 'विसरलं', ताप्रतौ 'विसंरुलं' इति पाठः । (४) काप्रतौ 'समचउरस्सादिखुज्ज-,' इति पाठः। (५) अ-आ-काप्रतिषु '-सठाणं णाम' इति पाठः । (६) काप्रतौ '-संघडणं णाम' इति पाठः । (७) का-ताप्रत्योः '-स्सुदएण रस'- इति पाठः । (८) का-ताप्रत्योः 'स्सुदएण फास-' इति पाठः ।

सरीरे आदाओ होदि तं आदावणामं। सोष्णप्रभा आतापः । जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे उज्जोओ होदि तं कम्ममुज्जोवं णामं । जस्स कम्मस्सुदएण भूमिमोट्ठहिय अणोट्ठहिय वा जीवाणमागासे गमणं होदि तं विहायगदिणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवाणं संचरणासंचरणभावो होदि तं कम्मं तसणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवाणं थावरत्तं होदि तं कम्मं थावरं णामं । आउ-तेउवाउकाइयाणं संचरणोवलंभादो ण तसत्तमत्थि, तेसिं गमणपरिणामस्स पारिणामियत्तादो। जस्स कम्मस्सुदएण जीवा बादरा होंति तं बादरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा सुहुमेइंदिया होंति तं सुहुमणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा पज्जत्ता होंति तं कम्मं पज्जत्तं णामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा अपज्जत्ता होंति तं कम्ममपज्जत्तं णाम । जस्स कम्मस्सुदएण एक्कसरीरे एक्को चेव जीवो जीवदि तं कम्मं पत्तेयसरीरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण एगसरीरा होदूण अणंता जीवा अच्छंति तं कम्मं साहारणसरीरं । जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणं सगसरूवेण केत्तियं पि कालमवट्ठाणं होदि तं थिरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणमुवरिम[1] धादुसरूवेण परिणामो होदि तमथिरणामं[2] । जस्स कम्मस्सुदएण चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवत्तादिरिद्धीणं सूचया संखंकुसारविंदादओ अंग-पच्चंगेसु उप्पज्जंति तं सुहणामं। जस्स कम्मस्सुदएण असुहलक्खणाणि उप्पज्जंति तमसुहणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवस्स सोहग्गं

कर्मके उदयसे शरीरमें आताप होता है वह आताप नामकर्म है। उष्णता सहित प्रभाका नाम आताप है । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें उद्योत होता है वह उद्योत नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे भूमिका आश्रय लेकर या विना उसका आश्रय लिए भी जीवोंका आकाशमें गमन होता है वह विहायोगति नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके गमनागमन भाव होता है वह त्रस नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके स्थावरपना होता है वह स्थावर नामकर्म है ।

जल, अग्नि और वायुकायिक जीवोंमें जो संचरण देखा जाता है उससे उन्हें त्रस नहीं समझ लेना चाहिये; क्योंकि, उनका वह गमन रूप परिणाम पारिणामिक होता है । जिस कर्मके उदयसे जीव बादर होते हैं वह बादर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय होते हैं वह सूक्ष्म नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होते हैं वह पर्याप्त नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव अपर्याप्त होते हैं वह अपर्याप्त नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे एक शरीरमें एक ही जीव जीवित रहता है वह प्रत्येकशरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे एक ही शरीरवाले होकर अनंत जीव रहते हैं वह साधारणशरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे रसादिक धातुओंका अपने रूपसे कितने ही काल तक अवस्थान होता है वह स्थिर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे रसादिकोंका आगेकी धातुओं स्वरूपसे परिणमन होता है वह अस्थिर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व और वासुदेवत्व आदि ऋद्धियोंके सूचक शंख, अंकुश और कमल आदि चिह्न अंग-प्रत्यंगोंमें उत्पन्न होते हैं वह शुभ नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे अशुभ लक्षण उत्पन्न होते हैं वह अशुभ नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवके सौभाग्य होता है वह

---

(१) अ-आ-ताप्रतिषु '-मुवरिमा' इति पाठः (काप्रतौ तु वाक्यमेवेदं नोपलभ्यते) (२) षट्खं पु. ६, पृ. ६३.

होदि तं सुहगणामं। जस्स कम्मस्सुदएण जीवो दूहवो होदि तं दूभगं णामं। जस्स कम्मस्सुदएण कण्णसुहो सरो होदि तं सुस्सरणामं। जस्स कम्मस्सुदएण खरोट्टाणं व कण्णसुहो सरो ण होदि[1] तं दुस्सरणामं। जस्स कम्मस्सुदएण जीवो आदेज्जो होदि तमादेज्जणामं। जस्स कम्मस्सुदएण सोभणाणुट्ठाणो वि जीवो ण गउरविज्जदि तमणादेज्जं णाम। जस्स कम्मस्सुदएण जसो कित्तिज्जइ कहिज्जइ जणवयेण तं जसगित्तिणामं। जस्स कम्मस्सुदएण अजसो कित्तिज्जइ[2] लोएण तमजसगित्तिणामं। जस्स कम्मस्सुदएण अंग-पच्चंगाणं ठाणं पमाणं च जादिवसेण णियमिज्जदि तं णिमिणणामं। जस्स कम्मस्सुदएण जीवो पंचमहाकल्लाणाणि पाविदूण तित्थं दुवालसंगं कुणदि तं तित्थयरणामं। एवमेदाओ बादालीसं पिंडपयडीओ। को पिंडो णाम ? बहूणं पयडीणं संदोहो पिंडो। तसादिपयडीणं बहुत्तं णत्थि त्ति ताओ अपिंडपयडीओ त्ति ण घेत्तव्वं, तत्थ वि बहूणं पयडीणमुवलंभादो। कुदो तदुवलद्धी ? जुत्तीदो।

सुभग नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवके दौर्भाग्य होता है वह दुर्भग नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे कानोंको प्यारा लगनेवाला स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे गधा एवं ऊंटके समान कर्णोंको प्रिय लगनेवाला स्वर नहीं होता है वह दुःस्वर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव आदेय होता है वह आदेय नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे अच्छा कार्य करनेपर भी जीव गौरवको प्राप्त नहीं होता है वह अनादेय नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जनसमूहके द्वारा यश गाया जाता है अर्थात् कहा जाता है वह यशःकीर्ति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे लोग अपयश कहते हैं वह अयशःकीर्ति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे अंग-प्रत्यंगका स्थान और प्रमाण अपनी अपनी जातिके अनुसार नियमित किया जाता है वह निर्माण नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव पांच महाकल्याणकोंको प्राप्त करके तीर्थ अर्थात् बारह अंगोंकी रचना करता है वह तीर्थंकर नामकर्म है। इस प्रकार ये ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं।

शंका - पिण्डका अर्थ क्या है ?

समाधान - बहुत प्रकृतियोंका समुदाय पिण्ड कहा जाता है।

शंका - त्रस आदि प्रकृतियां तो बहुत नहीं हैं, इसलिए क्या वे अपिण्डप्रकृतियां हैं ?

समाधान - ऐसा गहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वहां भी बहुत प्रकृतियोंकी उपलब्धि होती है।

शंका - वहां बहुत प्रकृतियोंकी उपलब्धि कैसे होती है ?

समाधान - युक्तिसे।

शंका - वह युक्ति कौनसी है ?

समाधान - क्योंकि, कारणके बहुत हुए विना भ्रमर, पतंग, हाथी और घोड़ा आदि नाना भेद

---

(१) अ-आ-काप्रतिषु 'सरो होदि' इति पाठः। (२) प्रतिषु 'गित्तिज्जइ' इति पाठः।

का जुत्ती ? कारणबहुत्तेण विणा भमर-पयंग-मायंग-तुरंगादीणं बहुत्ताणुववत्तीदो[1] । संपहि उत्तरुत्तरपयडिपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं- णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुस्सगदिणामं देवगदिणामं[2] ।। १०२ ।।

जं तं जादिणामं तं पंचविहं - एइंदियजादिणामं बेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचिंदियजादिणामं चेदि[3] ।। १०३ ।।

जं तं सरीरणामं तं पंचविहं- ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजइयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि[4] ।। १०४ ।।

जं तं सरीरबंधणणामं तं पचविहं - ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइयसरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि[5] ।। १०५ ।।

जं तं सरीरसंघादणणामं तं पंचविहं - ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेजइयसरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि[6] ।। १०६ ।।

नहीं बन सकते हैं। इससे जाना जाता है कि त्रसादि प्रकृतियां बहुत हैं ।

अब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं -

जो गति नामकर्म है वह चार प्रकारका है- नरकगति नामकर्म, तिर्यंचगति नामकर्म, देवगति नामकर्म और मनुष्यगति नामकर्म ।। १०२ ।।

जो जाति नामकर्म है वह पांच प्रकारका है - एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति नामकर्म ।। १०३ ।।

जो शरीर नामकर्म है वह पांच प्रकारका है - औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, और कार्मणशरीर नामकर्म ।। १०४ ।।

जो शरीरबन्धन नामकर्म है वह पांच प्रकारका है - औदारिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरबन्धन, आहारकशरीरबन्धन, तैजसशरीरबन्धन और कार्मणशरीरबन्धन नामकर्म ।। १०५ ।।

जो शरीरसंघात नामकर्म है वह पांच प्रकारका है - औदारिकशरीरसंघात, वैक्रियिकशरीरसंघात, आहारकशरीरसंघात, तैजसशरीरसंघात और कार्मणशरीरसंघात नामकर्म ।। १०६ ।।

---

(१) ताप्रतौ 'बहुत्ताणुववत्ती' इति पाठः । (२) षट्खं. जी.चू.१, २९ (३) षट्खं. जी.चू.१, ३०. (४) षट्खं. जी.चू.१, ३१. (५) षट्खं. जी.चू.१, ३२ (६) षट्खं. जी.चू.१, ३३.

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणिं।

जं तं सरीरसंठाणणामं तं छव्विहं- समचउरसरीर[1]संठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीर-संठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि[2] ॥१०७॥

चतुरं शोभनम्, समन्ताच्चतुरं समचतुरम्, समानमानोन्मानमित्यर्थः । समचतुरं च तत् शरीरसंस्थानं च समचतुरशरीरसंस्थानम् । तस्य संस्थानस्य निर्वर्तकं यत् कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्य्योपचारात् । न्यग्रोधो वटवृक्षः, समन्तान्मंडलं परिमण्डलम्, न्यग्रोधस्य परिमण्डलमिव परिमण्डलं यस्य शरीरसंस्थानस्य तन्न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थानं नाम । [3]अघस्तात् श्लक्ष्णं उपरि विशालं यच्छरीरं तन्न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थानं नाम । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्योपचारात् । स्वातिर्वल्मीकः, स्वातिरिव शरीरसंस्थानं स्वातिशरीरसंस्थानं । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्योपचारात् । दीर्घशाखं कुब्जशरीरम्, कुब्जशरीरस्य संस्थानं कुब्जशरीरसंस्थानम् । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येतदेव नाम, कारणे कार्योपचारात् । वामनशरीरस्य संस्थानं वामन-

---

ये सूत्र सुगम हैं।

जो शरीरसंस्थान नामकर्म वह छह प्रकारका है – समचतुरशरीरसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान, स्वातिशरीरसंस्थान, कुब्जशरीरसंस्थान, वामनशरीरसंस्थान और हुण्डशरीरसंस्थान नामकर्म ॥ १०७ ॥

चतुरका अर्थ शोभन है, सब ओरसे चतुर समचतुर कहलाता है । समान मान और उन्मानवाला, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । समचतुर ऐसा जो शरीरसंस्थान वह समचतुरशरीरसंस्थान है । उस संस्थानका निर्वर्तक जो कर्म है उसकी भी कारणमें कार्यका उपचार करनेसे यही संज्ञा होती है । न्यग्रोधका अर्थ वटका वृक्ष है, और परिमण्डलका अर्थ है सब ओरका मंडल । न्यग्रोधके परिमण्डलके समान जिस शरीरसंस्थानका परिमण्डल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डल शरीरसंस्थान है । जो शरीर नीचे सूक्ष्म और ऊपर विशाल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान कहलाता है । इसका कारण जो कर्म है उसकी भी कारणमें कार्यका उपचार होनेसे यही संज्ञा है । स्वातिका अर्थ वल्मीक अर्थात् वामी है । स्वातिके समान जो शरीरसंस्थान होता है वह स्वातिशरीरसंस्थान कहलाता है। इस शरीरका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है, क्योंकि, कारणमें कार्यका उपचार किया गया है । जिस शरीरकी शाखायें दीर्घ हों वह कुब्जशरीर है, कुब्जशरीरका जो संस्थान है वह कुब्ज-शरीरसंस्थान है । इसका कारण जो कर्म है उसका भी यही नाम है, क्योंकि, कारणमें कार्यका उपचार किया गया है । वामन शरीरका जो संस्थान है वह वामनशरीरसंस्थान है, अर्थात् जिसकी शाखायें ह्रस्व

---

(१) प्रतिषु 'समचउरससरीर-' इति पाठः । (२) षटखं. जी.चू.१, ३४. (४) काप्रतौ वाक्यमिदं त्रुटितं जातम् ।

शरीरसंस्थानम् । ह्रस्वशाखं[1] वामनशरीरम् । एतस्य कारणकर्मणोप्येषैव संज्ञा । विषमपाषाणभृतदृतिवत्[2] समन्ततो विषमं हुण्डम्, हुंडं च तत् शरीरसंस्थानं हुंडशरीरसंस्थानम् । एतस्य कारणकर्मणोप्येषैव संज्ञा ।

जं तं सरीरअंगोवंगणामं तं तिविहं – ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि[3] ।।१०८।।

सुगममेदं ।

जं तं सरीरसंघडणणामं तं छव्विहं– वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायण[4]-सरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीर-संघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि[5] ।। १०९ ।।

वज्रमिव वज्रम्, वज्रऋषभः[6] वज्रनाराचश्च वज्रर्षभवज्रनाराचौ, तौ एव[7] शरीर-संहननं वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननम्, वज्राकारेण स्थितास्थिः वेष्टकः ऋषभःतौ[8] भित्वा स्थितं वज्रकीलकं वज्रनाराचं । ऋषभवज्ररहितं[9] वज्रनाराचशरीर-

---

हों वह वामनशरीर है। उसका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है । विषम पाषाणोंसे भरी हुई मशकके समान जो सब ओरसे विषम होता है वह हुण्ड कहलाता है, हुण्ड ऐसा जो शरीरसंस्थान वह हुण्डशरीरसंस्थान है । इसके कारणभूत कर्मकी भी यही संज्ञा है ।

जो शरीरआंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकारका है – औदारिकशरीरआंगोपांग, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग और आहारकशरीरआंगोपांग नामकर्म ।। १०८ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है– वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन, वज्रनाराचशरीरसंहनन, नाराचशरीरसंहनन, अर्धनाराचशरीरसंहनन, कीलितशरीरसंहनन और असंप्राप्तसेवार्तशरीरसंहनन नामकर्म ।। १०९ ।।

जो वज्रके समान होता है यह वज्र कहलाता है । वज्रऋषभ और वज्रनाराच, इस प्रकार यहां द्वन्द्व समास है । इन दोनों रूप जो शरीरसंहनन है यह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन कहलाता है । वज्ररूपसे स्थित हड्डी और ऋषभ अर्थात् वेष्टन इन दोनोंको भेद कर जिसमें वज्रमय कीलें स्थित हैं वह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन है । जिसमें वज्रमय नाराच हों, पर ऋषभ वज्र रहित हो वह वज्रनाराचशरीरसंहनन है । इन दोनोंके विना जो शरीर संहनन होता है

---

(१) अ-आ-काप्रतिषु 'दद्यशाखं', ताप्रतौ 'दह्यशाखं' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'पाषाणभृतद्दतिवत्' इति पाठः । (३) षट्खं जी.चू.१, ३५. (४) ताप्रतौ 'णाराइण' इति पाठः । (५) षटखं. जी.चू.१, ३६. (६) काप्रतौ 'वज्रऋषभ' इति पाठः । (७) अ-आ-काप्रतिषु 'नाराचाः तं एव' ताप्रतौ 'नाराचः त एव' इति पाठः । (८) काप्रतौ 'तो' इति पाठः । (९) अ-आ-काप्रतिषु 'वज्रकीलकवज्रनाराचऋषभरहितं', ताप्रतौ 'वज्रकीलक (:) वज्रनाराच (:) ऋषभरहितं' इति पाठः ।

संहननम्। ताभ्यां विना नाराचशरीरसंहननम् । नाराचेन अर्द्धभिन्नं अर्द्धनाराचशरीर-संहननम् । अवज्रकीलैः कीलितं कीलितशरीरसंहननम् । स्नायुभिर्बद्धास्थि[1] असंप्राप्तसरिसृपादिशरीरसंहननम् । एतेषां कारणानि यानि कर्माणि तेषामेतान्येव नामानि । स्नाय्वन्त्र-सिरादीनां निर्वर्त्तकानि कर्म्माणि किन्नोक्तानि ? न, तेषामंगोपांगनाम्न्यन्तर्भावात्।

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं- किण्णवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हलिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि[2] ।।११०।।

जं तं गंधणाम तं दुविहं – सुरहिगंधणामं दुरहिगंधणामं चेदि[3] ।। १११ ।।

जं तं रसणामं तं पंचविहं – तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबिलणामं महुरणामं चेदि[4] ।। ११२ ।।

जं तं फासणामं तमट्ठविहं – कक्खडणामं मउअणामं गरुवणामं लहुअणामं णिद्धणामं ल्हुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं[5] चेदि[6] । ११३ ।

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वह नाराचशरीरसंहनन है। नाराचसे आधा भिदा हुआ संहनन अर्धनाराचशरीरसंहनन है । अवज्रमय कीलोंसे कीलित संहनन कीलितशरीरसंहनन है । जिसमें स्नायुओंसे हड्डियां बंधीं होती हैं वह असंप्राप्तसरीसृपादिशरीरसंहनन है । इनके कारण जो कर्म है उनके भी ये नाम हैं ।

शंका – स्नायु, आंत और सिरा आदिके बनानेवाले कर्म क्यों नहीं कहे ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, उनका आंगोपांग नामकर्ममें अन्तर्भाव हो जाता है ।

जो वर्ण नामकर्म है वह पांच प्रकारका है- कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रुधिरवर्ण, हरिद्रावर्ण और शुक्लवर्ण नामकर्म ।। ११० ।।

जो गन्ध नामकर्म है वह दो प्रकारका है – सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध नामकर्म ।।१११।।

जो रस नामकर्म है वह पांच प्रकारका है- तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर नामकर्म ।। ११२ ।।

जो स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकारका है- कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण नामकर्म ।। ११३ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

---

(१) प्रतिषु '-र्बध्नास्थि-' इति पाठः । (२) षट्खं जी.चू.१, ३७. (३) षट्खं. जी.चू.१, ३८. (४) षट्खं जी.चू.१, ३९. (५) अप्रतौ 'उण्हणामं' इति पाठः । (६) षट्खं जी.चू.१, ४०.

जं तं आणुपुव्विणामं तं चउव्विहं--णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामं तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामं देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामं चेदि[1] ।। ११४ ।।

सुगममेदं सुत्तं । संपहि णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरपयडिपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ।।११५।।

सुगमं ।

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लाणि तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ।। ११६ ।।

मुक्कपुव्वसरीरस्स अगहिदुत्तरसरीरस्स जीवस्स अट्ठकम्मक्खंधेहि एयत्तमुवगयस्स हंसधवलविस्सासोवचएहि उवचियपंचवण्णकम्मक्खंधंतस्स[2] विसिट्ठमुहागारेण जीवपदेसाणं अणुपरिवाडीए परिणामो आणुपुव्वी णाम । किं मुहं णाम ? जीवपदेसाणं विसिट्ठसंठाणं ।

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है - नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म।। ११४ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

अब नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं -

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नाम कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ।। ११५ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र तिर्यक्प्रतररूप बाहल्यकी श्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ।। ११६ ।।

जिसने पूर्व शरीरको छोड दिया है, किन्तु उत्तर शरीरको ग्रहण नहीं किया है, जो आठ कर्मस्कन्धोंके साथ एकरूप हो रहा है, और जो हंसके समान धवल वर्णवाले विस्रसोपचयोंसे उपचित पांच वर्णवाले कर्मस्कन्धोंसे संयुक्त है; ऐसे जीवके विशिष्ट मुखाकाररूपसे जीवप्रदेशोंका जो परिपाटीक्रमानुसार परिणमन होता है उसे आनुपूर्वी कहते हैं ।

शंका - मुख किसे कहते हैं ?

समाधान - जीवप्रदेशोंके विशिष्ट संस्थानको मुख कहते हैं ।

---

(१) षट्खं. जी.चू. १, ४१. (२) प्रतिषु 'कम्मक्खंधंतं तस्स' इति पाठः ।

णिरयगईए पाओग्गाणुपुव्वी णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी । तिस्से जं कारणं कम्मं तस्स वि एसा चेव सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो । संठाणणामकम्मादो जेण सरीरसंठाणणिप्फत्ती तेण णिप्फला णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी त्ति ण वोत्तुं[1] जुत्तं, अगहिदओरालिय-वेउव्वियसरीरस्स जीवस्स संठाणाणमुदयाभावादो कम्मइय[2]सरीरमसंठाणं मा होहदि त्ति जीवपदेसाणं अण्णण्णाए अणुपरिवाडीए अवट्ठाणस्स कारणमाणुपुव्वि त्ति णिच्छिदव्वं ।

उस्सेहघणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगदिं गच्छमाणसित्थमच्छस्स विसिट्ठमुहागारेण ट्ठियस्स एगो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ । पुणो तीए चेव जहण्णोगाहणाए णिरयगदिं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स बिदियो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ, पुव्विल्लजीवपदेसाणमणुपरिवाडीए अवट्ठाणादो पुव्विल्लागासपदेसादो पुधभूदआगासपदेससंबंधेण एत्थ अण्णारिसअणुपरिवाडीए अवट्ठाणदंसणादो । संपहि ताए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगइं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स तदियो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, पुव्विल्लअणुपरिवाडिअवट्ठाणादो पुव्विल्लागासपदेसादो पुधभूदआगासपदेससंबंधेण एत्थ वि अण्णारिसअणुपरिवाडीए अवट्ठाणस्स उवलंभादो । एदं कारणं सव्वत्थं वत्तव्वं । पुणो सव्वजहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वमुहागारेण

नरकगतिके योग्य जो आनुपूर्वी होती है वह नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी है, और इसका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है, क्योंकि, यहां कारणमें कार्यका उपचार किया गया है।

शंका – यतः संस्थान नामकर्मके उदयसे शरीरसंस्थानकी उत्पत्ति होती है अतएव नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतिका मानना निष्फल है ?

समाधान – ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि, जिसने औदारिक और वैक्रियिकशरीरको ग्रहण नहीं किया है ऐसे जीवके चूंकि संस्थानोंका उदय रहता नहीं है अतएव उसका कार्मणशरीर संस्थानरहित न होवे, इसलिए जीवप्रदेशोंके भिन्न भिन्न परिपाटीक्रमानुसार अवस्थानका कारण आनुपूर्वी प्रकृति है, ऐसा यहां निश्चय करना चाहिए ।

उत्सेघ घनांगुलके संख्यातवें भागमात्र सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले और विशिष्ट मुखाकाररूपसे स्थित सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प पाया जाता है । पुनः उसी जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले दूसरे सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका दूसरा विकल्प पाया जाता है, क्योंकि, पहलेके जीवप्रदेशोंका अनुपरिपाटीसे जो अवस्थान पाया जाता है उससे यहांपर पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे भिन्न अनुपरिपाटीका अवस्थान देखा जाता है । अब उस ही सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मका तीसरा विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि, पहलेकी अनुपरिपाटी रूपसे जो अवस्थान है इससे यहांपर भी पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे अन्य अनुपरिपाटीका अवस्थान उपलब्ध होता है । यह कारण सर्वत्र कहना चाहिए । पुनः सबसे जघन्य

---

(१) अप्रतौ: 'त्ति वोत्तुं' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'भावादो । कम्मइय–' इति पाठः ।

णिरयगइं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स चउत्थो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, अलद्धपुव्वमुहागारेण परिणयत्तादो। पुणो अवरस्स सित्थमच्छस्स ताए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगइं गच्छमाणस्स पंचमो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ, अलद्धपुव्वमुहागारेण परिणमिददव्वस्स कारणत्तादो। एवं छ-सत्त-अट्ठ-णव-दस-आवलिय-उस्सास-थोव-लव[1]-णालि-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व[2]- पल्ल-सागर-रज्जुतिरियपदरे त्ति णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा परूवेयव्वा। पुणो एदेणेव कमेण दो-तिण्णिआदितिरियपदरवियप्पा वड्ढावेदव्वा जाव सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति। णवरि णव-णवमुहवियप्पेहि णिरएसु उप्पज्जमाण-सित्थमच्छाणं सा सव्वजहण्णोगाहणा धुवा कायव्वा। रज्जुपदरं रज्जुवग्गो तिरियपदरं त्ति एयट्ठो। सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण तिरियपदरे गुणिदे जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा सित्थमच्छसव्वजहण्णो-गाहणमस्सिदूण लद्धा त्ति भणिदं होदि। एत्तो अहिया ण लब्भंति। कुदो ? साभावियादो।

संपहि पदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणाए णिरएसु मारणंतिएण तेण विणा वा विग्गह-गदीए उप्पज्जमाणसित्थमच्छाणं तत्तिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति।

अवगाहनाके साथ अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका चौथा विकल्प होता है, क्योंकि, पहले नहीं उपलब्ध हुए ऐसे मुखाकाररूपसे वह परिणत हुआ है। पुनः उसी सर्वजघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका पांचवां विकल्प उपलब्ध होता है, क्योंकि, यह अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे परिणमित हुए द्रव्यका कारण है। इस प्रकार छह, सात, आठ, नौ, दस, आवलि, उच्छ्वास, स्तोक, लव, घटिका, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर और राजु रूप तिर्यक्प्रतर तक नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प कहने चाहिए। पुनः इसी क्रमसे दो तीन आदि तिर्यक्प्रतरविकल्पोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने मात्र नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प प्राप्त होने तक वढाते जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नूतन नूतन मुखविकल्पोंके साथ नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंकी वह सबसे जघन्य अवगाहना ध्रुव करनी चाहिए। राजुप्रतर, राजुवर्ग और तिर्यक्प्रतर ये एकार्थवाची शब्द हैं। सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे तिर्यक्प्रतरको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश उपलब्ध होते हैं उतने ही सिक्थमत्स्यकी सबसे जघन्य अवगाहनाकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प प्राप्त होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इनसे अधिक विकल्प नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है।

अब एक प्रदेश अधिक सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकोंमें मारणांतिक समुद्घात करके या उसके विना विग्रहगति द्वारा उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्योंके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उतने ही विकल्प

---

(१) अप्रतौ, 'अव', का-ताप्रत्योः 'ताव' इति पाठः। (२) का-ताप्रत्योः 'संवच्छर पुव्व' इति पाठः।

अहियोगाहणाए अहिया मुहागारा ण लब्भंति, कारणसत्तिभेदेण कज्जभेदुप्पत्तीदो। ण च एक्कम्हि कारणे समाणसत्तिसंखोवलक्खिए[1] संते कज्जसंखाविसयभेदो अत्थि, विरोहादो। जहण्णोगाहणमुहागारेहि पदेसुत्तरजहण्णोगाहणमुहागारा अण्णोण्णं किं सरिसा आहो विसरिसा त्ति ? जदि पढमादिया अणुपरिवाडीए पढमादिएहि सरिसा तो पदेसुत्तरजहण्णोगाहणाए लद्धणिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा पुणरुत्ता होंति। अह जदि ण सरिसा तो एदे मुहागारा णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए ण होंति। अह होंति, जहण्णोगाहणाए अण्णेहि वि[2] मुहागारेहि होदव्वमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे- ण ताव पढमपक्खे वुत्तदोसो संभवदि, अणब्भुव[3]गमादो। ण च असरिसपक्खे वुत्तदोसो वि संभवदि, अण्णाणुपुव्वीदो असरिसमुहागारुप्पत्तीए विरोहाभावादो। ण च जहण्णोगाहणाए एसा आणुपुव्वी सकज्जमुप्पादेदि, पदेसुत्तरओगाहणा-पडिबद्धाणुपुव्वीए सेसोगाहणासु वावारविरोहादो। ण च जहण्णोगाहणमुहागारेहि पदेसुत्तरजहण्णोगाहणमुहागाराणं सरिसत्तमत्थि, पुणरुत्तप्पसंगादो। एसा आणुपुव्वी पुव्विल्लाणुपुव्वीहिंतो पुधभूदे त्ति कधं णव्वदे ? भिण्णकज्जकरणादो। ण

प्राप्त होते हैं। अधिक अवगाहनाके अधिक मुखाकार नहीं प्राप्त होते, क्योंकि, कारणरूप शक्तिमें भेद होनेसे ही कार्यमें भेद उत्पन्न होता है। समान शक्तिसंख्यासे युक्त एक कारणके होनेपर कार्यमें संख्याविषयक भेद नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है।

शंका - जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंसे प्रदेशोत्तर जघन्य अवगाहनाके मुखाकार परस्परमें क्या समान होते हैं या असमान ? यदि प्रथमादि मुखाकार अनुपरिपाटीसे प्रथमादिकोंके साथ समान होते हैं तो एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनाके द्वारा प्राप्त हुए नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प पुनरुक्त होते हैं। और यदि वे समान नहीं होते हैं तो ये मुखाकार नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके नहीं हो सकते। यदि उसीके होते हैं तो जघन्य अवगाहनासे भिन्न भी मुखाकार होने चाहिए ?

समाधान - यहां उस शंकाका समाधान कहते हैं, प्रथम पक्षमें कहा हुआ दोष तो सम्भव नहीं है, क्योंकि, उसे स्वीकार नहीं किया है। तथा असमान पक्षमें कहा हुआ दोष भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, अन्य आनुपूर्वीसे असमान मुखाकारोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता। जघन्य अवगाहनाकी यह आनुपूर्वी अपने कार्यको उत्पन्न करती है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, एक प्रदेश अधिक अवगाहनासे सम्बन्ध रखनेवाली आनुपूर्वीका शेष अवगाहनाओंमें व्यापार माननेमें विरोध आता है। जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंके साथ एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंकी समानता होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेमें पुनरुक्त दोष आता है।

शंका - यह आनुपूर्वी पहलेकी आनुपूर्वियोंसे भिन्न है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान - उसका कार्य भिन्न है इसीसे उसकी उनसे भिन्नता जानी जाती है। और भिन्न

---

(१) अ-आ-काप्रतिषु 'संखोवसक्कीए', ताप्रतौ 'संखोवलक्की (द्दी) ए' इति पाठः।
(२) अ-आ-प्रत्योः 'मि' इति पाठः। (३) ताप्रतौ '-अणुब्भुव-' इति पाठः।

च भिण्णकज्जं कुणमाणाणं सत्ती समाणा, विरोहादो। ण च सत्तिभेदे संते वत्थुस्स अभेदो अत्थि, अव्ववत्थापसंगादो । एवं पादेक्कं सव्वोगाहणावियप्पेसु सूचीअंगुलस्स असंखेज्ज-दिभागगुणिदरज्जुपदरमेत्ता णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा वत्तव्वा । एवं लब्भंति त्ति कादूण सित्थमच्छोगाहणं महामच्छोगाहणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि जहण्णोगाहणवियप्पट्ठमेगरूवे पक्खित्ते सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ता ओगाहणवियप्पा होंति, संखेज्जघणंगुलेसु वि सेडीए असंखेज्जदिभागो त्ति संववहारुवलंभादो । पुणो जदि एगोगाहणवियप्पस्स अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदतिरियपदरमेत्ता णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति तो संखेज्जघणंगुलमेत्तोगाहणवियप्पाणं केवडिए णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पे लभामो त्ति संखेज्जघणंगुलेहि सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततिरियपदरेसु गुणिदेसु जावदिया आगासपदेसा तावदिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए उत्तरोत्तरपयडीओ होंति ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ।।११७।।

सुगममेदं ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीयो लोओ सेडीए[1] असंखेज्जदि-

---

कार्योंको करनेवालोंकी शक्ति समान होती है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है। शक्तिभेदके होनेपर भी वस्तुमें भेद नहीं होता, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेमें अव्यवस्थाका प्रसंग आता है ।

इस तरह पृथक् पृथक् सब अवगाहनाविकल्पोंमें नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणित राजुप्रतर प्रमाण विकल्प कहने चाहिए । वे इस तरहसे प्राप्त होते हैं, ऐसा समझकर सिक्थ-मत्स्यकी अवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें जघन्य अवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा एक मिलानेपर श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्प होते हैं; क्योंकि, संख्यात घनांगुलोंमें भी श्रेणीके असंख्यातवें भागरूप संख्याका व्यवहार होता हुआ देखा जाता है ।

पुनः यदि एक अवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प अंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणित तिर्यक्प्रतर प्रमाण प्राप्त होते हैं तो संख्यात घनांगुल मात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार संख्यात घनांगुलोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग-मात्र तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं ।

तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ।। ११७ ।।

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां लोकको जगश्रेणिके असंख्यातवें

---

(१) काप्रतौ 'पयडीओ ताओ सेडीए' इति पाठः ।

भागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ। एवडियाओ पयडीओ ।।११८।।

एदस्स सुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा- सुहुमणिगोदअपज्जत्तएण उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए तिरिक्खेसु मारणंतिए मेल्लिदे एगो तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, एगागासपदेससंबंधेण अपुव्वमुहागारेण परिणामहेदुत्तादो। पुणो बिदियसुहुमणिगोदअपज्जत्तएण ताए चेव जहण्णोगाहणाए तिरिक्खेसु उप्पण्णएण अपुव्वो मुहायारो संपत्तो । ताधे बिदियो तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि। एवमपुव्व-अपुव्वमुहागारेहि तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो जाव जहण्णोगाहणमस्सिदूण घणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए उत्तरोत्तरपयडिवियप्पा लद्धा त्ति । संपहि जहण्णोगाहणमस्सिदूण तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए वियप्पा एत्तिया चेव लब्भंति, एदेहिंतो अहियमुहागाराणमेत्थ असंभवादो। सुहुमणिगोदअपज्जत्ताणं, सव्वजहण्णोगाहणाए तिरिक्खेसु उप्पज्जमाणाणं णव-णवमुहागारा पगरिसेण जदि बहुआ होंति तो घणलोगमेत्ता चेव होंति त्ति भणिदं होदि। पुणो पदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणाए वि घणलोगमेत्ता चेव तिरिक्खगइपा-ओग्गाणुपुव्विणामाए पयडिवियप्पा लब्भंति। एवं दुपदेसुत्तरजहण्णोगाहणप्पहुडि महामच्छुक्क-स्सोगाहणे त्ति ताव एदेसिं सव्वोगाहणाणं घणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा उप्पादेदव्वा।

भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां होती हैं ।। ११८ ।।

इस सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं । यथा- सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण सबसे जघन्य अवगाहनाके द्वारा तिर्यंचोंमें मारणान्तिक समुद्घातके करनेपर एक तिर्यंचगतिप्रायोगग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि, वह एक आकाशप्रदेशके सम्बन्धसे अपूर्व मुखाकार रूपसे परिणमनका हेतु है । पुन: दूसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीवके उसी जघन्य अवगाहनाके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेपर अपूर्व मुखाकार प्राप्त होता है । उस समय दूसरा तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प होता है । इस तरह जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर घनलोक प्रमाण तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्पोंके प्राप्त होने तक अपूर्व अपूर्व मुखाकारोंके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिए । जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि, इनसे अधिक मुखाकारोंका प्राप्त होना यहां सम्भव नहीं है । सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकोंके सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेपर नूतन नूतन मुखाकार उत्कृष्ट रूपसे यदि बहुत होते हैं तो वे घनलोक प्रमाण ही होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । पुन: एक प्रदेश अधिक सर्वजघन्य अवगाहनाके आश्रयसे भी घनलोकप्रमाण ही तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मके प्रकृतिविकल्प होते हैं । इसी प्रकार दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनासे लेकर महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना तक इन सब अवगाहनाओं सम्बन्धी अलग अलग घनलोक प्रमाण तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए ।